Quest Journals
Journal of Research in Humanities and Social Science
Volume 3 ~ Issue 11 (2015) pp: 83-88
ISSN(Online):2321-9467
www.questjournals.org

Research Paper

संस्कृत साहित्य में मानव जीवन मूल्यों का अध्ययन

मधुबाला मीणा,
प्रवक्ता , संस्कृत , राजकीय महाविद्यालय , राजगढ़ , अलवर , राजस्थान

शोध सारांश

भारतीय साहित्य और संस्कृति आचरणात्मक एवं आदर्शपूर्ण मानव मूल्यों के लिये एक अनुपम वैश्विक धरोहर हैं, जो शताब्दियों से अजश्र धारावत प्लावित सामाजिक जीवन में अपनी असीम गरिमा और अनन्त प्रासंगिकता को सिद्ध करते आ रहे हैं। भारतीय धरातल पर प्रणीत वेद वाङ्मय ही धरती पर मानव मूल्यों की सुदृढ आधारशिला रख चुका है, जिसके आधार पर हमारी भव्य संस्कृति की अट्टालिका अपनी पूर्ण गरिमा के साथ खड़ी है। मानव को कदाचित जब अपनी अस्मिता का बोध हुआ होगा, तब ही से उसने मूल्यों की परिकल्पना और उनका आचरण आरंभ कर दिया होगा। चार वेद और एक सौ आठ उपनिषद मानव को अपने गंतव्य की ओर इस तत्परता के साथ अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं कि उससे कहीं भी कोई त्रुटि न हो जाय। कहना न होगा कि मानव के लिये आचरणात्मक और अनाचरणीय जैसे सभी तत्वों का वेद वाङ्मय ने विस्तार में वर्णन किया है, जिन्हें हम आज मूल्यों की संज्ञा से अभिहित कर रहे हैं।

संस्कृत साहित्य में मानव जीवन मूल्य :–

मानवीय पुरुषार्थ एवं विचारण की भिन्नता से उनमें उत्कृष्टता, निम्नता, शासकत्व, शासितत्व, स्वामी–सेवक आदि स्तर स्वतः बन जाते हैं। संसार में असंख्य पदार्थ हैं, विषय हैं, भिन्न रुचिवाला लोक अपनी–अपनी अभिरुचि के अनुसार अपने जीवन की सुगमता के लिए साधन जुटाता है। इसी कारण उनमें वर्ग–विभेद भी हो जाता है।नव–समाज की यह विविधता उनके कार्य के अनुरूप दायित्व एवं अधिकार देती है। अपने–अपने दायित्व को पूरा करते हुए अधिकार पाना मानव जीवन का अंग बन जाता है। मानवों में प्रकृत गुणों की भिन्नता के कारण समाज में अन्याइयों–अधर्मियों–दुराचारियों का वर्ग भी पैदा हो जाता है। इस वर्ग की क्षयता के लिए समाज के हर व्यक्ति को जागरुक रहना होता है। यदि उपेक्षा हो जाती है, तो वह वर्ग फैलकर समाज में अशांति का वातावरण बना देता है, जिससे मानव–जीवन कष्टकर बन जाता है। मानव–मूल्यों की स्थापना उनका जीवनचर्या में आचरण इसी कारण आवश्यक हो जाता है। ये मानव–मूल्य मानव–जीवन को सुखमय बनाते हैं, रसमय–आनन्दमय बनाते हैं। समाज में व्याप्त भय को दूर करते हैं। अतः समाज को इनकी सतत् आवश्यकता है।हम यहां मानव–मूल्यों पर संक्षिप्ततया विचार कर रहे हैं– दया एक ऐसा मानवीय गुण है,जिससे व्यक्ति का चित्त दूसरे के दुःख से द्रवीभूत हो उठता है। दूसरे को कष्ट में फंसा देखकर, दूसरे को दीन–विपन्न या घायल देखकर जो करुणामयी तरंगें हमारे मन में उठा करती हैं, उनसे व्याप्त मानस दशा दया कहलाती है। साधारणतया कहा जाय तो परदुःखकातरता दया है। दया के लिए आश्रय की जाति–पांति धर्म, वर्ग, निर्धन, धनिक आदि की आवश्यकता नहीं होती है। वह तो हृदय से उभरकर आंसू के माध्यम से व्यक्त होती है। वह सदा परार्थ होती है। मानव –स्वभाव में दया होने से कोई दुःखी व्यक्ति असहाय अवस्था में पड़ा नहीं रह सकता। दया के कारण समाज में दुःख का निवारण होता है, अतः यह अत्यन्त आवश्यक है। उत्तर रामचरित नाटक में राम दया को मानव का उत्तम गुण मानते हैं, किन्तु वे लोक आराधना हेतु उसे भी छोड़ने में दुःख का अनुभव नहीं करते।स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।आराधनाय लोकस्य मुञ्चतोनास्ति मे व्यथा॥परोपकार मानवीय गुण समाज के लिए शांति एवं सुख देता है। परोपकार में त्याग की भावना विद्यमान रहती है। इस गुण के कारण मनुष्य अपना संचित धन, अपना समय, दूसरों की सेवा–सुश्रुषा तथा सहायता में लगाता है। उपकृत व्यक्ति उपकारी का ऋणी हो जाता है। वह भी उपकार करता है किसी अन्य का। इस प्रकार इस गुण से समाज में सभी व्यक्ति अपना–अपना कार्य सुगमता से पूरा कर लेते हैं। असहाय अवस्था में पड़े नहीं रहते हैं। परोपकार से न केवल व्यक्ति का भला होता है, अपितु निरर्थक प्रतिद्वन्द्विता, ईष्या–मात्सर्य से छुटकारा मिलता है तथा पारस्परिक सौहार्द्र बढ़ता है। परस्पर स्नेही लोग जीवन की सरसता का अनुभव करते हैं।परोपकारः कत्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि। परोपकारजं पुण्यं स्यात्क्रतुशातैरपि॥सभी प्राणी अपने–अपने जीवन में कुछ न कुछ संचय करते हैं। अपने संचित में से दूसरे को देना त्याग है। परार्थ अपने अधिकार को निर्मूल्य रूप में समर्पित करना त्याग ही है। भारतीय संस्कृति में त्याग की अनेक गाथाएं सुनी जाती हैं। भगवान श्रीराम ने पिता द्वारा प्रदत्त राज्य को त्याग गर वनवास ले लिया था। अशांति एवं पारस्परिक कलह को दूर करने का सबसे अच्छा माध्यम त्याग है। त्याग से स्वार्थपरता एवं कमी आती है। आत्मा में संतोष बढ़ता है। पारस्परिक स्नेह बढ़ता है। दूसरे का क्रोध भी शांत होता है। त्याग–भावना से समाज में दुःखकारक अन्याय–अत्याचार रह की नहीं सकते। इसलिए त्याग को एक मानव–मूल्य के रूप

में स्वीकार किया जाता है। त्यागो हि पुरूषो। मानव में नौ रसों के भाव विद्यमान होते हैं, जिसके अंदर सात्विक गुण की प्रधानता होती है, उसमें से रस शीघ्र उदय हो जाते हैं। करूण रस की उत्पत्ति होने से व्यक्ति करूणाभिभूत हो जाता है। और वह दूसरे के दुःख को अपना समझ लेता तथा उसके निवारण के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। निम्नलिखित पद्य करूण विप्रलम्भ का सुंदर उदारण है–पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषुया।नादत्ते प्रियमण्ऽनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्॥सेक्ष याति शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम्॥सहिष्णुता नामक गुण क्रोध की विकृति को दूर करने के लिए है। मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु क्रोध है। नीति ग्रंथों में कहा गया है–क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहाद्स्मृतिभ्रंशयः।स्मृतिभ्रंशाद् बुध्दिनाशो बुध्दिनाशाद् प्रणश्यति॥मनुष्य को विनाश से बचाने के लिए 'सहिष्णुता' नामक गुण है। यदि इसमें सहिष्णुता है, सहनशीलता है, तो हम दूसरे के द्वारा की जा रही अनियमितता पर क्रोध न करके उसकी भूल को सुधार लेंगे। अन्यथा कोप पर बैठे, तो दोनों ओर से अनर्थ ही हो जाएगा। इस कारण सहिष्णुता से समाज में शांति बनी रहती है। भारतीय शास्त्रों में अहिंसा को बडी ग़हराई से देखा गया है। सामान्यतया किसी को न मारना अहिंसा है। परंतु, हम जानते हैं कि किसी भी प्राणी को मन से, वाणी से तथा कर्म से किसी प्रकार की चोट न पहुंचाना अहिंसा है। भारतीय जैन धर्म में अहिंसा व्रत का पालन करने के कारण ही साधु लोग कपड़े की पट्टी मुख पर बांधे रहते हैं कि कहीं कोई कीड़ा आदि उनके मुख में प्रवेश न कर जाए। हम केवल बड़े प्राणियों तथा मनुष्यों की ही हिंसा से नहीं बचते हैं, अपितु चींटी–जैसे क्षुद्र जीव की भी हिंसा से घबरा उठते हैं। यदि अहिंसा धर्म का पालन मानव–समाज द्वारा किया जाए, तो संसार में व्याप्त मार–काट आदि विसंगतियों से छुटकारा पाया जा सकता है। अहिंसा परमो धर्मः। अस्तेय नामक गुण का आशय है–चोरी न करना। बिना श्रम के अपना भोग्य अर्जित करना अस्तेय है। इस गुण को अपनाने से समाज में न केवल शांति रहेगी, अपितु निर्भयता भी आयेगी–अस्तेयो धर्म साधनम्।अपरिग्रह नामक गुण का तात्पर्य है– आवश्यकता से अधिक संचय न करना। इस गुण के अपनाने से समाज में समानता, समाजवाद की स्थापना हो सकेगी तथा समाज की विपन्नता भी दूर होगी।दान एक ऐसा गुण है, जिससे समाज में धन एवं वस्तु के वितरण में समानता आती है। इसके कारण प्रबल पुरुषार्थी या प्रयत्न करने वाले जन अपनी योग्यता एवं कुशलता से प्रभूत अर्थ संचय कर लेते हैं, परंतु दान गुण द्वारा समाज के अयोग्य एवं अकुशल व्यक्तियों को देकर आर्थिक विषमता की खाई को पाटने का कार्य कर देते हैं। इसका परिणाम होता है, धनवान, निर्धन के बीच असमानता अधिक नहीं रहने पाती है। निर्धर्न ईष्या नहीं कर पाता है, क्योंकि उसे अपना प्राप्तव्य स्वयं मिल जाता है। पौराणिक कथाओं में कई स्थानों पर ऐसा वर्णन आया है कि याचक ही नहीं मिले। सन्तोष नामक गुण की शास्त्रों में अपार महिमा गाई गई है ''जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान'' अर्थात् मनुष्य में जब सन्तोष होता है, तो बाकी सारी सम्पत्तियाँ उसके सामने फीकी पड़ जाती हैं। समाज में इस गुण की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि संतोष से समाज में अपूर्व शांति, प्रेम तथा सौहार्द रहेगा। असन्तोष व्याप्त होने पर अनेकानेक दुर्गुण स्वतः पैदा हो जाते हैं। जब प्राप्ति से अधिक इच्छाएँ जाग्रत होती हैं तो असन्तोष पैदा होता है। कन्दैः फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालं सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम्।

सत्य नामक गुण की संसार में अति प्रतिष्ठा है, क्योंकि सत्य से समाज में विश्वास बढ़ता है। नीतिग्रन्थों में कहा गया है, ''सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।'' पुराणकाल में सत्य का अजीवन पालन करने वाले अनेक पूर्वज हैं। अपनी वचन–रक्षा के लिए अपने प्राण तक त्याग दिए। सत्यवादी हरिश्चन्द्र का कीर्तिमान तो सारे संसार में ही प्रसिद्ध है। महाराज युधिष्ठिर भी सत्यवादी थे। पूर्वकालीन ऋषि महात्मा तो सर्वदा सत्य–भाषण ही करते थे। आज भी समाज में सत्य की प्रतिष्ठापना से बड़ा लाभ भी मिल सकता है। चारों ओर मिथ्या भाषण, मिथ्या प्रचार से जनता भ्रमित हो रही है। न्याय मंदिरों में असत्य का ही सहारा लिया जाता है, जिससे समाज में चारों ओर असन्तोष व्याप्त है। मानव का मानव के ऊपर से विश्वास उठ गया है। समाज में कार्य में बाधा आ रही है। अन्याय बढ़ रहा है। यदि सत्य का पालन सभी मानव करें, तो न न्याय की आवश्यकता पड़े और न रक्षा–कर्मियों की। समाज में शांति भी रहे और वह निश्चिन्त होकर पुरुषार्थ सिद्धि कर सकें।क्षमा एक ऐसा गुण है, जो मानव द्वारा की गई भूल को सुधारने का अवसर देता है। क्षमा से भूलकर्ता पश्चात्ताप करता है, वह अपनी भूल को सुधारने का प्रयत्न करता है। उसकी मानसिक दशा परिवर्तित हो जाती है। परन्तु यदि क्षमा के स्थान पर दूसरा भी क्रोध कर बैठे, तो निश्चित ही अनर्थ भी होगा और भूलकर्ता पुनः भूल करने के लिए दृढ़ हो जाएगा। पश्चात्ताप और भूल–सुधार करने का तो प्रयत्न होना ही संभव नहीं है। इसलिए क्षमा आवश्यक है। गुणस्याभरणं ज्ञानं ज्ञानसभरणं क्षमा।लोभ मानव के लिए छः शत्रुओं में परिगणित है। लोभ से व्यक्ति को अनेकशः हानियाँ सम्भव हैं। लोभ का विनाश का कारण तो शास्त्रों में सर्वत्र कहा गया है। लोभ होने से व्यक्ति दूसरे द्वारा ठगा जाता है। इसलिए निर्लोभता मानव के लिए सदा हितकारी है। कार्या कार्यबिचारो लोभविमूढस्य नास्त्येव।विनम्रता मानव का ऐसा गुण है, जो दूसरे व्यक्ति को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। वह प्रशंसक बन जाता है। अतः विनयी जन सर्वत्र यशसिद्धि करते हैं। विद्यवान में विनम्रता की भावना की अनिवार्यता इसीलिए स्वीकार किया गया है। वृक्ष भी फलवान् होकर नम जाते हैं। सामर्थ्य और शक्ति पाकर विनयी होना मनुष्य की प्रशंसा का हेतु है। भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैः। स्नेह नामक गुण ऐसा है, जो मानव में आत्मीयता का भाव पैदा करता है, जीवन को सरल बनाता है। मानव–मन की रूक्षता को दूर करता है। इस गुण के कारण समाज में पारस्परिक सौहार्द बढ़ता है। स्नेहः वैरविनाशकः। विपत्तिकाल में जिस गुण से अपने मनोबल को दृढ़ रखा जाता है, उसे धैर्य कहा जाता है। इस गुण के कारण व्यक्ति दुर्गम विपत्ति को भी सहसा पार करता जाता है। इस गुण के कारण ही व्यक्ति का पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होता है। त्याज्य न धैर्य विधुरेऽपि काले। विवेक नामक गुण व्यक्ति में अत्यावश्यक है। इसके द्वारा ही वह किसी पर सर्वांगीण विचार कर पाता है। विवेकशीलता ही मानव की पूंजी है। विवेकहीनता मनुष्य को निकृष्ट बनाती है। इसी विवेक केकारण समाज का बुद्धिजीवी वर्ग बड़े से बड़े विप्लव को टाल पाता है। नहिं ज्ञानेन सदृशं पवित्रामिह विद्यते।उत्साह नामक गुण विपत्ति के समय पूर्ण मनोयोग से किया गया

*Corresponding Author: मधुबाला मीणा

प्रयत्न है, इस गुण से व्यक्ति के पौरुष की प्रशंसा होती है तथा समाज के लिए कीर्तिमान स्थापित होता है। उत्साहः कार्यसाधकः।उदारता नामक गुण व्यक्ति में वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना भरता है। इस गुण के कारण ही मानसिक संकीर्णता का ह्रास होता है। मानसिक संकीर्णता मानव–समाज के लिए अत्यंत घातक है; क्योंकि यह क्षेत्रीयता विविध वादों का जन्म होने में सहायक बनती है, जिससे पारस्परिक विद्वेष बढ़ता है।शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।वक्ता दशसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥आतिथ्य का गुण भारतीय संस्कृति में प्रधानतया स्वीकार किया गया है। वहां तो अतिथि को देव रूप ही माना गया है। इस गुण से समाज को असीम लाभ मिलता है। इसके द्वारा व्यक्ति आपातकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से पा लेता है। अतिथि देवो भव।इस उक्त विश्लेषित मानव– मूल्यों को तो यहां कहा ही गया है, इनके आनुषंगिक अन्य भी मानव–मूल्य हैं। इन मूल्यों के संरक्षण से मानव–जीवन अत्यन्त सुगम, स्नेहिल तथा रसमय बनता है। इसमें किसी प्रकार के संदेह को कोई अवसर नहीं।

मानव जीवन की उत्कृष्टताः–

चौरासी लाख योनियों में मानव जन्म को वेद वाङ्मय ने अत्यंत उत्कृष्ट सिद्ध किया है। उपनिषद का स्पष्ट कथन है कि–

'आहार निद्रा भय मैथुनादि

सामान्यमेतत् पशुभिः नराणां

ज्ञानम् नराणां अधिकम् विशेषः

ज्ञानेन शून्यः पशुभिः समानः'

उपरोक्त कथन से ज्ञात होता है कि ज्ञान का व्यक्ति के जीवन में कितना महत्व है। यह ज्ञान मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए मूल्यों के रूप में विकसित होता है। इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि "मूल्य ज्ञान आधारित व्यवहारिक तत्वों का कुल योग हैं"। उक्त उपनिषद वाक्य स्पष्ट करता है कि ज्ञान के बिना मनुष्य पशु बन जाता है। इसलिए हम वर्तमान में केवल "मानव मूल्य" के बारे में बात करते हैं क्योंकि "पशु मूल्य" जैसे वाक्यांश कहीं नहीं पाए जाते हैं। मानव जीवन की पूर्णता का वर्णन करते हुए शंकराचार्य ने अपना ग्रंथ लिखा

'विवेक चूडामणि' में कहते हैं कि–

'दुर्लभम त्रयमेवै तद्दैवानुग्रह हेतुकम

मनुष्यत्वम् मुमुक्षत्वम् महापुरुष संश्रयः'

मूल्य की अमूल्य परिभाषाः– अर्वाचीन अर्थ–प्रधान युग में मूल्य शब्द का प्रयोग कई अर्थों में हो रहा है, यथा 'दाम', 'कीमत', 'भाव' इत्यादि, जो किसी वस्तु की लेन–देन में ही प्रयुक्त होते हैं, जिनका आचरणात्मक जीवन मूल्यों से कोई संबंध नहीं है। "मानव जीवन को उसके उद्गम से उत्स तक ले जाने वाले आचरणीय सूत्रों के समाहार स्वरूप को ही मानव–मूल्य" कहा गया है, जिनके अंतर्गत धर्माचरण, सत्य वचन, परोपकार, दानशीलता, निष्काम सेवा, त्याग, शान्ति, अहिंसा, सौहार्द्र भावना इत्यादि परिगणितहोते हैं। इन मानव–मूल्यों की उत्कृष्टता के वर्णनार्थ ही संपूर्ण वेद वाङ्मय का प्रणयन शताब्दियों पूर्व हुआ है। प्रातःकाल में नेत्रोन्मीलन से लेकर मानव द्वारा अनन्त निद्रा में प्रवेश करने तक की उसकी दीर्घ जीवन यात्रा में इन मानव मूल्यों को अपनाने की अनिवार्यता का वर्णन वेद वाङ्मय ने फलश्रुति सहित किया है। इनके अभाव में जीवन निस्सार मरुस्थल के समान रह जाता है। इन मानव मूल्यों के साँचे में ढालकर जीवन को सार्थक बनाना ही हमारे सनातन साहित्य का एक मात्र उत्स रहा है।

मानव मूल्य और प्रासंगिकताः– संप्रति युवा पीढी की दिशाहीन जीवन शैली को देखकर उद्विग्न शिक्षाविद–समाज ने कदाचित वर्तमान के पाठ्यक्रमों में इन मानव मूल्यों को सम्मिलित करने का निर्णय लिया होगा, परन्तु शताब्दियों पूर्व ही हमारे क्रान्तद्रष्टा ऋषियों ने जीवन में इनकी अनिवार्यता एवं प्रासंगिकता के महत्व को पहचानकर इन्हें तत्कालीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम में सम्मिलित ही नहीं किया, प्रत्युत इनके आचरण पर अत्यधिक बल भी दिया। संप्रति पश्चिमी सभ्यता की झंझा में दिशाहीन बहती जा रही युवा पीढ़ी के लिये इन मूल्यों का आचरण अनिवार्य है, क्योंकि आज की पीढ़ी उछृंखलता को उन्नति और विज्ञान के विकृत उपयोग को विकास मानने की बड़ी भूल करती जा रही है। परिणामतः भारतीय प्रजा का एक सिंह–भाग इन मानव मूल्यों से अनभिज्ञ ही रह गया है, अतः संप्रति शिक्षा–प्रणाली के निर्माताओं का परम कर्तव्य यह है कि वे संस्कृत भाषा के अध्ययन को महाविद्यालय स्तर तक अनिवार्य बना दें।

प्राचीन वाङ्मय और मानव मूल्यः– संस्कृत में प्रणीत हमारा संपूर्ण वाङ्मय वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, भागवत, भगवद्गीता आदि के रूप में विद्यमान है, जिसमें हमारे जीवन को सार्थक बनाने के सभी उपक्रमों का उल्लेख विस्तार से है। इन उपक्रमों के रूप में वर्णित 'मानव मूल्यों' का उल्लेख संक्षेप में अधोलिखित पंक्तियों में किया गया है, यथा–

*Corresponding Author: मधुबाला मीणा

परोपकार और निष्काम सेवाः– जीवन एवं शरीर की प्राप्ति मानव–सेवा के लिये हुआ है, न कि भोग हेतु। इस संदर्भ में प्रकृति ही हमारा प्रथम गुरु है, यथा–

'परोपकाराय फलन्ति वृक्षः

परोपकाराय वहन्ति नद्यः

परोपकाराय दुहन्ति गावः

परोपकारार्थमिदम् शरीरम्।'

उपरोक्त श्लोक से हमें स्वतः ही अपने कर्तव्य का बोध हो जाता है। मानव सेवा को माधव सेवा मानने की विशेषता हमारी संस्कृति में है। महाभागवत में वर्णित कहानी से ज्ञात होता है कि महाराज रंतिदेव ने जब महाविष्णु प्रकट हुए, तो उनसे मोक्ष मांगने के बजाय जनता की सेवा करने की शक्ति देने का वरदान मांगा।

'सेवा धर्ममिदम् सर्वम् ब्रोच्यते शास्त्र सम्मतम्

रंतिदेवो यथा सेवाम् अकरोत सर्वधा सदा'।

वाल्मीकि रामायण में भरत और लक्ष्मण का उदाहरण देते हुये कहा गया है कि–

'सेवया मानवानाञ्च कृतज्ञो भरतो भवत्

माधवश्यैव सेवाच कृतज्ञो लक्ष्मणो भवत'।

भाव यह है कि भाई भरत के कहने पर उन्होंने पादुकाओं के माध्यम से जनता की सेवा की और लक्ष्मण ने स्वयं माधव की सेवा की, इसलिए दोनों सेवा भावना की विशेषता का प्रतिनिधित्व करते हैं।

धर्माचरण – उल्लेखनीय है कि यहाँ प्रयुक्त 'धर्म' शब्द किसी धर्म के लिए न होकर केवल 'कर्तव्य पालन' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। शूद्र धर्मव्याध की कथा का उल्लेख महाभारत के वनपर्व में मिलता है, जिसने मांस बेचा लेकिन ब्राह्मण कौशिक को यह उपदेश देकर सिद्ध कर दिया कि "संसार में आत्मधर्म से बढ़कर कुछ भी नहीं है, जिसका आचरण मनुष्य के लिए हितकर हो।" यह सर्वोच्च धर्म है।

'जन्म संस्कार मात्रेण धर्म मार्ग प्रवर्तकः

उपदेशम् कौशिकाय धर्मव्याधो भवत्तदा'।

श्रीमद्रामायण में माता कौशल्या श्रीरामचन्द्र से अपने धर्म का आचरण करने का उपदेश देते हुये कहती है–

'यंपालयसि धर्मम् त्वम् धृत्याच नियमेनच

सवै राघव शार्दूला धर्मम्त्वामभिरक्षतु'।

भाव होता है कि 'हे राम! जिस धर्म का तुम पालन करोगे वही तुम्हारी रक्षा करेगा। इस देश में धर्माचरण को बहुत प्रभावशाली माना जाता था। महाभारत के वनपर्व में युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न पूछकर यक्ष के संतुष्ट होने पर वह कहता है, 'हे युधिष्ठिर! बुद्धिजीवियों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि इस संसार में सदाचार से बढ़कर कोई तपस्या नहीं है, जिसके अभ्यास से आपने इसकी महत्ता सिद्ध कर दी है।'

'तपस्वधर्म वर्तित्वम् इति प्रोक्तम् बुधैस्सदा

तस्मात्तदेव कर्तव्यम् यदा धर्मेण द्वापरे'।

श्रीमद्भगवद्गीता के तृतीय अध्याय 'कर्मयोग' के 35वे श्लोक में भी इसी तथ्य की पुष्टि की गयी है, यथा–

'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्

स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मो भयावहः'।

*Corresponding Author: मधुबाला मीणा

त्याग भावनाः– श्वास क्रिया की भाँति मानव के लिये त्याग भावना अत्यंत सहज होनी चाहिये, क्योंकि श्वास और आहार की भाँति सब कुछ स्वीकार करने के उपरान्त यदि शरीर उनका किसी न किसी रूप में परित्याग नहीं करता है, तो वह उस शरीर के लिये हानिकारक ही सिद्ध होगाय इसी प्रकार हम जो कुछ भी संचित करते हैं उनका त्याग भी अनिवार्य है। जब हम 'अपनी आवश्यकतआओं की उपेक्षा कर किन्हीं जरूरतमन्दों का उपकार करते हैं, तो उसे ही त्याग भावना' कहा गया है। कठोपनिषद का स्पष्ट कथन है कि कर्म, संतान अथवा धन के माध्यम अमृतत्व की स्थिति को कदापि नहीं पाया जा सकता है. केवल त्याग के माध्यम ही इसे प्राप्त किया जा सकता है, यथा–

'न कर्मणा न प्रजया धनेन

त्यागेनैकेन अमृतत्व मानसुः'।

महाभारत में राजा शिबि का आख्यान वर्णित है, जिसने एक कपोत की रक्षा के लिये अपने शरीर को काटकर बाज को मांस दिया था।

'त्यागेनैकेन ख्यातोभूत शिभिस्सर्व महान् तधा

कपोत रक्षणार्धाय स्वशरीरमदात्तदा'।

महर्शि दधीचि और महारथी कर्ण त्याग भावना के संदर्भ में उल्लेखनीय गौरवशाली चरित्र हैं। महर्षि दधीचि ने वृत्तासुर के संहार के लिये अपनी रीड़ की हड्डी को दान में दे दिया, जिससे वज्रायुध का निर्माण हुआ, तो दानी कर्ण ने अपने जन्मजात कवच और कुंडल को दान में देकर अपनी त्याग भावना का परिचय दिया।

वचन पालन दृ वचन पालन को यदि भारतीय संस्कृति का प्राणतत्व कहा जाय तो कदाचित अतिशयोक्ति नहीं होगी, क्योंकि इस धरती पर सदियों से वचन पालन को जीवन से भी अत्यधिक महत्व दिया गया है, यथा–

'रघुकुल रीति सदा चलि आई

प्राण जाय पर वचन न जाई'।

इसी तथ्य को राजा हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन में साकारकर 'सत्य हरिश्चन्द्र' बन गया 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' में स्पष्टतः कहा गया है–

'सत्य पालन धर्मेण हरिश्चन्द्रो भवत्तदा

राज्यम् सर्वम् परित्यत्वा श्मशानेच भवत्तदा'।

मत्स्य पुराण में राजा बलि का आख्यान विस्तार में वर्णित हैय जब राक्षस गुरु शुक्राचार्य को ज्ञात होता है कि राजा बलि ने वामन को तीन पग धरती दान देने का वचन दे चुका है, तो वह बलि को अपने वचन से मुकर जाने के कई तथ्य प्रस्तुत करता है, परन्तु बलि अपनी बात से टस से मस नहीं होता है । इसीलिये राजा बलि के बारे में कहा गया है–

'बली राजा भवतत्रा सर्वेभ्यो दानकर्मणा

त्यागी भूत्वातु लोकेच कीर्तिमान भवत्तदा'।

कविकुल गुरु कालिदास ने अपने महाकाव्य 'रघुवंशम' के पंचम सर्ग में महाराज रघु की प्रशंसा में कहा कि रघु महराजमहर्षि वरतन्तु के शिष्य कौत्स की इच्छापूर्ति के लिये चैदह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें दान में देकर अपनी वचनबद्धता का निरूपण किया, यथा–

'रघुवंशे महाराजा विश्वजिद्याग तत्परः

धनम् ददौच कौत्साय रघुस्तत्र महानुभूत'।

उपसंहार :–

विषय की विशदता एवं स्थानापन्नता को दृष्टि में रखते हुये प्रस्तुत आलेख में विषय पर विहंगम दृष्टिपात मात्र किया गया है। वेद वाङ्मय में प्रयुक्त आचरणीय जीवन मूल्यों का अन्तिम उत्स मानव को पूर्ण शान्ति प्रदान करना ही है, क्योंकि भारतीय जीवन–दर्शन संतुष्टि और मानसिक शान्ति में ही परमानन्द को निहित मानता आ रहा है। अतः कहना न होगा की वेद वाङ्मय में वर्णित जीवन मूल्यों के आचरण के माध्यम इसी परमानन्द की स्थिति को प्राप्त करना ही हमारा

*Corresponding Author: मधुबाला मीणा

गंतव्य रहा है। संप्रति अर्वाचीन जीवन में व्यक्ति समस्त संपदाओं और भोगों के होते हुये भी जिस शून्यता को महसूस कर रहा है, वह यदि उससे मुक्त होना चाह रहा है, तो उसके लिये इन उपरोक्त जीवन मूल्यों को पूर्ण निष्ठा के साथ अपनाने के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है। वर्तमान युवा पीढी भी जब तक विज्ञान के आकर्षक भ्रमजाल और तथाकथित पश्चिम की 'सभ्यता' से स्वयं को मुक्त नहीं कर पायेगा, तब तक उसके लिये शान्ति मृगतृष्णा ही रहेगी । कहा जा सकता है कि संस्कृत वाङ्मय किसी एक पुरातन भाषा का इतिहास हीं नहीं अपितु भारतीय मनीषा का संचित कोष है। यह केवल काव्य – सुधा के निस्यंद से ही सिंचित नहीं रहा, इसकी विविध विधाओं ने सैदव विश्व के विद्यानुरागियों को आकृष्ट किया है। कहीं ऋषियों के उद्‌गार हैं तो कहीं यज्ञीय पूर्ण आस्था , कहीं काव्य की मधुर अभिव्यक्ति है तो कहीं अनन्त के सूक्ष्म के अवधारण की जिज्ञासा, कहीं प्राचीन आचार्यों की तार्किक मेधा की अन्वेषणा है तो कहीं विज्ञान के विविध पक्षों का उन्मीलन। सिर्फ आवश्यकता है हम अपनी धरोहर को वैज्ञानिक सोच के साथ अंगीकार करके जीवन मूल्यों में धारण करना चाहिए ।

सन्दर्भ सूची :– विविध संस्कृत महाकाव्यों वर्णन सन्दर्भ सहित वर्णित है ।